International Research Vision (Int. Res. Vn.)
ISSN: 2454-3721
Volume 2 Issue 2: 27-33, 2016

संत कबीर की नारी भावना की प्रासंगिकता

दिलीप कुमार सिंह
हिन्दी विभाग, एम. आर. एम. कॉलेज, दरभंगा – 846004, बिहार

प्रभु की अनन्त कृतियों से उनकी संपन्नता, विलक्षणता, अद्भुत प्रतिमा, अद्वैत मेधा, महानता तथा चमत्कारिक क्षमता प्रतिबिम्बित होती है। किन्तु नारी एक ऐसी रचना है जो अति दुरूह है, अबोधगम्य है। इस रहस्यमयी कमनीय सृष्टि में नारी को महान दार्शनिक, द्रष्टाकवि, क्रान्तिदर्शी मनीषी, योगारूढ़ तपस्वी, मनोविज्ञान वेत्ता, नारद जैसे ब्रह्मर्षि, देवराज इन्द्र, शिव, विष्णु, ब्रह्मा जैसे त्रिदेव, अथ्येता और समाजसेवी नहीं जान पाये। सबने पृथक–पृथक परिभाषायें दी, अपनी–अपनी व्याख्या प्रस्तुत की। कितने पराजय स्वीकार कर पराड.मुख हो गए। एक ने भी अनेक परिभाषायें दी। युग के महत्तम कवि सिद्ध भक्त तुलसी ने लेखनी टेक दी। उनका लेखन आवर्त सदृश्य है। शेक्सपियर ने अमूल्य रूचिकर निधि से लेकर दुर्बलता मात्र से संबोधित किया। ''प्रसाद'' ने विश्व प्रहेलिका का रहस्य बीज से प्रारंभ कर ''नारी'' तुम केवल श्रद्धा हो'' कहकर विश्राम ले लिया। दृढ़ संकल्प ''टालस्टाय'' और अंतः प्रेरित गाँधी जीवन भर नारी संतरण की समस्या हल करते रहे और गुत्थी सुलझाते रहे दोनों के मार्ग भिन्न किन्तु समस्या अनिर्णीत, यथावत। विरक्ति से अलंकृत, सुख–दुख के भुक्त भोगी ''प्रेमचन्द्र जी'' ने ''गबन'' की अलंकारप्रियता से लेकर ''बड़े घर की बेटी'' तक का कंटकाकीर्ण तथा विपदा संकुल मार्ग निपटाया। वात्सायन और फ्रायड जैसे मनीषियों ने इसे प्रेरक–शक्ति, मूल प्रेरणा या कर्म–श्रोत कहा। मनु याज्ञवलक्य और भारद्वाज जैसे यशस्वी पुण्यश्लोक ऋषियों ने इसे मुक्त, बंधनहीन और तप्त कंचन की उपाधि दी। श्वेतकेतु और भीश्म ने इसे पुरूष की गरिमा तथा उसके गौरव को चुनौती माना। उन्होंने नारी को मायाजाल और प्रपंच भी निरूपित किया। चाणक्य जैसे नीतिकार ने उससे सजग रहने की सलाह दी परन्तु अभिप्रेत की प्राप्ति का साधन बताया। सर्वाधिक विचारकों और मुनियों ने उसे गाम्भीर्यहीन और स्वकेन्द्रित कहकर पीछा छुड़ाया। सुकरात और अफलातून ने उसे समकक्षता दी, पर अरस्तू ने उसके अधिकार का अपहरण किया। वाशिंगटन स्टालिन और चर्चिल ने उसकी उपेक्षा की तो नेलसन, जेफरसन और नेहरू ने उसकी अपेक्षा की। नेपोलियन ने कहा – ''सबसे बड़ी भोग्य वस्तु अगर संसार में कोई है तो वह है स्त्री। राम और कृष्ण ने उसे सम्मान दिया। महावीर और बुद्ध ने उसकी अवहेलना की। मोहम्मद ने अंकारूढ किया, ''ईसा'' ने सामने खड़ा रखा – न ''हॉ'', न ''ना''।

विभिन्न शक्तियों से मूर्तरूप लेनेवाली दुर्गा चिरकुमारिका हैं और जगदम्बा हैं। शाक्त मतानुकूल नारी उपास्य है, संभोग्य नहीं। ''स्त्री समस्या सकला जगत्सु''। तंत्रशास्त्र के वाम मार्ग में पंच मकारों के रूप में नारी का उपभोग सिद्धिप्रद है। अघोर पंथ में सिद्धि का मार्ग नारी के माध्यम से है – योगिनी या कपालिका। सांख्य ने पुरूष को लुंज और प्रकृति को माना है। प्रकृति का नाट्य कर्म ही माया है। इस प्रकार आकर्षण बंधन और मोह का एक कारण मानकर ''कपिल'' ने शांति ली। पर्याय से सृष्टि और तत्गत व्यापार प्रकृति के भाव हुए। वेदों और उपनिषदों ने उसे गेय माना तो गीता और पुराणों ने हेय। बाईबिल उसे बिषफल कहा तो कुरान ने उसे पुण्यरूप में स्वीकृत किया। महर्षि वाल्मीकि को नारी कार्पण्य ने अभिभूत कर पौरूष को अभिशप्त कर दिया। पर्यंक शायिनी मेनका विश्वामित्र के आग्नेय तेज को शमित कर भी श्लाध्य बनी रही और दूसरी ओर नर के तपोबल से उर्वशी साकार हुई – मेनका से सहस्त्रगुणित। पुष्पदंत ने नारी की मुग्धा धुवतयः कहकर दुत्कार दिया। कृष्ण–द्वपायन द्वास। और वशिष्ठ के नियोग द्वारा ही संसृति सृजन का साधन बताया। ''आदि शंकराचार्य'' ने शक्ति रहित शिव को शव निरूपित किया किन्तु संन्यास मार्ग के लिए नारी को त्याज्य बताया – यह उनका हृदय पक्ष का विकर्शण था, सैद्धान्तिक अथवा तार्किक नहीं। इसमें ''सर्व खाल्वविदं ब्रह्म'' की अवलेहना है। संभवतः राजा अमरूक की काया में प्रवेश के पश्चात् यह विकर्शण भावनारूप में उदित हुआ। श्री रामानुज के विशिष्टाद्वैत में नारी का कोई वरेण्य स्थान नहीं, किन्तु गृहस्थी है, गृहणी है। विशिष्टाद्वैत का विपर्यय हुआ तो कुन्ज वन और प्रमोद वन स्थापित हुए यह नारी का परम स्वैचारिणी रूप था। श्री वल्लभचार्य जी से इसको प्रेरणा मिली जिससे सखि–संप्रदाय का प्रारंभ हुआ और काव्य का स्वरूप भी

बदल गया। हरिराम व्यास जैसे कवियों और सूरत संग्राम की चर्चा होने पर भिखारी दास ने यहाँ तक कह दिया –

मानव जनम अवतरयो तीन वस्तु के योग।
द्रव्य उपावन हरिभजन और कामिनी संग भोग।।

विद्यापति, सूर और प्रायः रीतिक कालीन रसासिद्ध रसिक कवियों ने नारी की कमनीय काया को रूप–लावण्य में ऐसे चिपक गए– जैसे नारी मात्र भोग–विलास की वस्तु बननकर काव्य के उपजीव्य बन गयी। मुनि पराषर ने लुब्ध मधुप की भाँति अपने कोष में बन्दी बनाकर नारी की श्रेष्ठता प्रतिपादित की। महर्षि च्यवन ने नारी के माध्यम से अमरत्व का विधान बनाने का प्रयत्न किया। महेश्वर भगवान शिव ने मदन–दहन कर इस सबकी निस्सारता बतायी। कनिष्ठिकाष्ठित कालिदास ने नारी को संभोग्य माना। अंगिरा और बालाबिल्य ऋशियों ने उपादेय, ममतामयी और पूज्य बताया। विक्रम ने त्याज्य और भोज ने अभीसिप्त माना। रघुवंश ने सहचरी और यदुवंश ने उसे स्वामिनी का स्थान दिया। नारी को प्रायः अबध्य माना गया है। गौतम और जमदग्नि ने अविश्वनीय माना तो मनु ने उसे पूज्य, स्तुत्य माना। मध्य युग ने दासी–भोग्य और नवयुग ने उसे सूत्रदात्री के रूप में देखा।

नारी को ''सावित्री'' ने पति से पूर्ण ऐक्य संधिहीन तादातम्य का रूप दिया, सीता ने मानिनी सेविका, राधा ने समर्पण एवं पूर्ण विलय, रूक्मिणी ने अर्थगांभीर्य और शालीनता, हेलन ने अहं और उल्लास, डेसडेभोना ने आकर्शण, अपराजेयता और एकाकीपन, पामेला ने यौन आकर्षण और राजनीतिक षड्यंत्र, सीने तारीकाओं ने भौतिकता का प्रश्रय और अंगप्रदर्शन, मेरी ने कुत्सित वासना और हिंसा, पार्वती ने पोशण और आत्मत्याग, धूमावती ने पति से मुक्ति, अनसुइया ने पति की सेवा, त्रिपुर सुन्दरी ने पति से सेवा, लीलावती ने पति में तल्लीनता, मन–बुद्धि का केन्द्र स्थान, शकुन्तला और दयमन्ती प्रेम का उत्कर्ष, लैला और हीर ने प्रेम में स्व का वलिदान, गार्गी ने जगत–जंजाल से मुक्ति, तारा और मंदोदरी ने स्वार्थ और वैभव, अहिल्या ने प्रवंचना, कुन्ती ने त्याग, द्रौपदी ने नैसर्गिता, संतुलन एवं समाहार, जोन ऑफ आर्क ने साहस, लक्ष्मीबाई ने कर्तव्य–जन्म स्वाधिकार, सुरूचि ने दर्पपूर्ण एकाधिकार, सुनिति ने विनम्रता एवं आत्म सम्मान, कैकेयी ने पश्चाताप ''सहसा करि पाछे पछिताहीं'' , उर्मिला ने अनन्य निष्ठा से आत्मोर्सग और उदात्त चरित्र, यशोद्वारा ने द्वन्द्व और पुनः आत्मदान, मलिकाओं और वारांगनाओं ने चरित्रहीनता, नगरवधुओं ने अहंतुष्टि, देवदासियों में अन्धविश्वास और अविवेकशीलता, कुबरी ने अवसरवादिता।

इसी तथ्यपूर्ण लेख के आलोक में मुझे भर्तृहरि के ''श्रृंगार शतक'' के कुछ श्लोक और संत कबीर के नारी विषयक दोहे स्मरण हो आते हैं जो परस्पर कितने तथ्यपूर्ण और विरोधी है। जो एक ओर हृदय वीणा को राग रंजित कर झन झनाती है तो दूसरी ओर मष्तिश्क झंझावात उठाकर सारी भावनाओं और मधुर कल्पनाओं की कोमल लचकती डालियों को झकझोर कर रख देती है।

भर्तृहरि लिखते हैं .....
रसिक जनें के देखने योग्य उत्तम वस्तु क्या है?
..... मृगनयनियों का प्रेमप्लावित मंजु मुख–मंडल।
सूँघने योग्य उत्तम वस्तु क्या है?
..... स्त्रियों के मुख की सुवासित गर्म वाष्प।
सुनने योग्य क्या है?
..... स्त्रियों की लरजती मधुमिष्ठ वाणी।
स्पर्श करने योग्य क्या है?
..... स्त्रियों के कंचन सी कमनीय काया।
स्वाक के योग्य क्या है?
..... स्त्रियों के अधर पल्लव का मधु–रस।

बाद में जब उन्हें रमणी रहस्य का अनुभव हुआ तो
ऐसे टूटे–बिखरे कि ''वैराग्यशतक'' की रचना हो गयी।
डसने उसी सत्य को स्वीकार किया जैसा कबीर साहेब ने किया।

कबीरदास की कही हुई बातें अनुभव सिद्ध और

कटु सत्य हैं। इसलिए उन्होंने कहा – ''तू कहता कागज की लेखी,
मैं कहता आँखिन देखी रे।''

संत कबीर ने जीवन में जितनी गहराई में उतरकर देखे उतना शायद विश्व में कोई संत या कवि इतनी गहराई तक नहीं पहुँच सके। उनके दोहे हो या पद– सभी में कटु सत्य और अनुभव इतना नग्न और प्रखर है कि हमारी आँखों चुँधिया जाती है, मन के तार झनझना उठते हैं, भावना आकुल–व्याकुल होकर शान्त हो जाती है, भावुकता की बदली उनके यथार्थ के झोकें में तितर–वितर हो जाती है। इतना तक कि हम अपनी कमजोरियों को जानकर तिलमिला उठते हैं, और उनके आगे से भागकर कहीं मुँह छिपा लेना चाहते हैं। क्योंकि उसके यथार्थ अनुभव के तीव्र प्रकाश में टिकना असंभव–सा हो जाता है।

संत कबीर ने नारी की निन्दा नहीं की, वरन नारी के कारण जो पुरूष में कमजोरियां आती हैं, उसकी विवक शक्ति पर पर्दा पड़ती है, उसके ज्ञान–चक्षु पर जो मोह–ममता का विषैला आक्रमण होता है, जो उसके जीवन के उद्देश्य को दिग्भ्रमित कर इन्द्रिय जन्य सुख–भोगों की तृष्णा, लम्पटता और विलासी प्रवृति को जगाता है – उसके मन भंवर को नचाता तड़पाता है – उसकी से बचने के लिए उन्होंने हमें चेतावनी दी, सावधान किया और सचेत करने हेतु नारी के रूप, लावण्य और भोग–विलास की निस्सारता, क्षणभंगुरता और दुखद परिस्थिति की वास्तविकता से हमें परिचित कराया। ताकि हम अपने को पहचान सकें अपने जीवन के लक्ष्य की प्राप्ति कर सके, वास्तविक सुख को पहचान सके। क्योंकि उनकी दृष्टि में मानव जीवन अनमोल है – उसका एक महान उद्देश्य व आदर्श होना चाहिए।

''रात गँवायो सोय करि, दिवस गँवायों खाय।
हीरा जनम अमोल था, करैड़ी बदले जाय।।''

कहकर हमें सावधान किया। उनकी दृष्टि बहुत पैनी थी–

जो आदमी को सीधे आरपार कर जाती थी– उसकी कमजोरियों को नस–नस में ढूँढ लेती थी, रोम–रोम में छिपे चोरों को पकड़ लेती थी। ऐसे में मानव के कल्याणार्थ उन्होंने नारी आलोचना को अस्वभाविक नहीं, वरण व्यवहारिक है। प्रायः पुरूष नारी से भोग–विलास करने में ही अपने जीवन का चरम उद्देश्य मानता है और अपने जीवन का सृजनात्मक शक्ति और प्रतिभा को उसी नारी की अभ्यर्थना और झूठी खुशी में नष्ट कर देता है। इसलिए उन्होंने स्पष्ट शब्दों में बड़े तीखे वाण छोड़े।

''छुई मुई सी कामिनी, यह तन विष की बेल।
मारै लोग कटार से यह मारै हँस खेल।।''

यानी लाजवन्ती सी सिमटी–सिकुड़ी कमनीय स्त्री विष की लता है क्योंकि लोग किसी को अस्त्र–शस्त्र से मारते हैं जबकि कमनीय स्त्री अपनी हँसी खेल में ही पुरूष का सर्वस्व हरण कर तड़पा–तड़पा कर मार डालती है, यह मनोवैज्ञानिक सत्य है।

''जा तन की झाई पड़त, अन्धा होत भुजंग''
उस नर का क्या हाल हो, जो नित नारी संग।।''

यानी जब गर्भवती स्त्री की छाया पड़ने से साँप भी अंधा हो जाता है, तो उस पुरूष की कितनी दयनीय स्थिति है, जो रात–दिन स्त्री के साथ चिपटा हुआ है।

''नाहर के नख मे बैसे, मुख में बसे भुजंग।
बिच्छु के पिच्छी बसै नारी क सब अंग।।''

यानी– शेर के पंजा–नख में जहर होती है, साँप के मुँह में विष होता है, बिच्छू की पूँछ जहरीली होती है लेकिन स्त्री के अंग–अंग में विष व्याप्त है, रोम–रोम विषैला है। तब पुरूष नित्य नियमित उस विष को पान कर कैसे जीवित रह सकता?

''जहाँ जड़ाई सुन्दरी तू जनि जाय कबीर।
उड़ि के भसम जो लागई, सूना होय सशीर।।''

यानी – जहाँ मरी हुई सुन्दरी को जलायी जाए वहाँ भी हमें नहीं जाना चाहिए, क्योंकि वह इतनी विषैली है कि उसके जले हुए शरीर की राख के स्पर्श से हमारा मन शरीर शून्य हो जाता है।

''सुन्दरी ना सोहे सनकादिक साथ।
कबहुँ दाग लगावै कारी हाँड़ी हाथ।''

यानी– सुन्दर स्त्री कालिख जमा वर्तन के समान है जो कभी भी हमें कलंकित, अपमानित और लंछित कर सकती है।

''नारी तो हमने भी किया, पर किया नहीं विचार।
देखा समझा साथ में, नारी बड़ा विकार।।''

यानी– नारी सारी बुराइयों की जड़ है। उसके कारण पुरूष के चित्त में नाना तरह के मनोविकार के विषाणु जन्म लेते है। उपर से वह जितनी ही सुखद, कमनीय, सुन्दर और आनन्दमयी है, भीतर से वह उतनी ही दुखद, कुरूप , घिनौना और दुःखदायिनी है। इसलिए पंडित मुल्लआ ने नारी को ''नरक की खान'' ''अधम से अधम'' अधम अति नारी'' तथा ''दोजख का दरवाजा'' कहा है।

''माया के झक जग जरै कनक–कामिनी लाग।
कहहि कबीर कस बाचि हैं, रूई लपेटी आग।।''

यानी– माया मोह और भौतिकता के बंधन में पड़कर मानव–संसार दग्ध और दुखी है। उसमें धन और सुन्दरियों की दाहकता में रात–दिन मानव अपनी वास्तविकता सुख–शांति से दूर जल भुन रहा है। भला रूई जैसे पुरूष स्त्री रूपी आग के साथ लिपटकर कब तक बच सकता है?

''कनक कामिनी देखि के तू मत भूल सुरंग।
मिलन विछुड़न दुहेलरा, जस केंचुल तजत भुजंग।।''

यानी– सम्पति और सुन्दरी को पाकर पुरूष बावला और मुर्ख बन जाता है। वह अपनी वास्तविकता से अपरिचित होकर रात–दिन उस क्षणिक सुख–सुन्दरता के मोह अलंकार में अपने जीवन के सारे सत्व और उद्देश्यों को खो देते हैं। फिर बाद में जब सम्पत्ति और सुन्दरी से विछोह होता है – जो होना अनिवार्य है– तो पीड़ा से वह तड़पता है, कहराहता है, छटपटाता है। उसे कहीं चैन नहीं, कहीं शीतलता नहीं। वह ऐसे ही तड़पकर जीता–मरता है – जैसे गर्म पानी में जीवित मछली। मिलन और विछोह होना वैसा ही स्वाभाविक है जैसे साँप पुराने केंचुल को उतार फेंकता है, और नये केंचुल को धारण करता है। तब ऐसे क्षणिक मिलन के सुख और विछोह के दुख में जीव क्यों पागल–सा भटकता है?

''साँप बिच्छू का मंत्र है, माहुर हू झारा जाय।
विकट नारी के पालै पड़ै काढ़ि कलेजा खाय।।''

यानी साँप बिच्छू के विष का मंत्र है उपचार है जहर को दूर करने के उपाय है, मगर दुष्टा, कर्कशा, कुलटा और इर्ष्यालु–झगड़ालू स्त्री पुरूष को चूस–चूस कर कच्चा खा जाती है, उसके जीवन के सुख–सौरभ शांति–शालीनता, शील–सौजन्य, समृद्धि सुशमा को नागिन–सी डँस लेती है।

''खरबूजा संसार है, नारी छूरी बैन।
पलटा पंजा शेर का, यों नारी का नैन।।''

संत कबीर ने स्त्री को झूठी माया की जननी माना।

वह माया मोह का कारण है, मोह बंधन और सारे दुखों का कारण है। अस्तु नारी के भोग्य रूपों को उन्होंने त्याज्य माना। क्योंकि उसके भोग्य रूपों में पुरूष की ऐसी आसक्ति और अज्ञानता बढ़ जाती है कि पुरूष अपने आप को पहचान नहीं पाता। ''झूठे सुख की फेर में वह सारी जिन्दगी भटकता रहता है पर उसे कहीं तृप्ति नहीं मिलती। वह सुख–विलास की टोह में कुत्सित से कुत्सिठ कर्मो आचरणों और कुविचारों को अपनाता है जिसके कारण वह दलित पतित बनकर मानव जीवन जैसे हीरे को जुआरी की तरह हार जाता है, खो देता है। इससे बढ़कर और दुखद बात किसी पुरूष या नारी के

लिए क्या होगी, जो अज्ञानता और अविवेकशीलता में अपने जीवन के सत्व, आदर्श लक्ष्य शाश्वत आनन्द और अक्षय शक्ति–प्रतिभा को खो देता है। तभी तो संत–भक्त शिरोमीण गोस्वामी तुलसीदास ने कहा –

''अवगुण मूल शूलप्रद प्रमदा सब दुख की खानि।
तते कीन्ह निवारण मुनि में यह जिय जाति।।''
नर तन जाय विषय मन देहीं।
पलटि सुधा से विष सह लेहीं।।

बिहार ने कहा – वामा तब लागि दाहिनो जब लगि बस अरू दाम।
दाग घटै अरू बल घटै वामा वाम को वाम।।

यानी – स्त्री तभी तक शुभकारणी है तब तक पुरूष के शरीर में शक्ति और गांठ में घन रहता है। जब शक्ति और घन पुरूश के पास घटने लगता है, स्त्री साथ छोड़ देती है, दुर्भाग्य आ जाता है।

भर्तृहरि जैसे रसिक, सौन्दर्यप्रेमी और द्रष्टा कवि को जब कामिनी नारी की वास्तविकता का परिचय मिला तब ''श्रंगार शतक'' लिखने वाले वे ''वैराग्य शतक'' लिखकर अपने सौन्दर्य प्रियता, कामिनी आशक्ति और मोह को धिक्कारा। उन्हें अपने आप पर बहुत ग्लानि हुई। ऐसी ग्लानि और वितृष्णा हुई कि वे राजमहल छोड़कर सन्यास ले लिए और खुलकर कह दिया –

''भोगं न भुक्ता वयमेंव भुक्ता''

यानी – हम भोग को नहीं भोगते, वरन भोग हमें भोग लेता है।

भगवान बुद्ध भी यशोधरा जैसी परम सुन्दरी पत्नी के सहवास साहचर्य और राजभवन के सुख–ऐश्वर्य–विलास को त्यागकर वैरागी बन गए। सांसारिक भोग–विलास और कामुकता की निस्सारता और क्षण भंगुरता के बोध होने पर वे ''बुद्ध'' हो गए। ऐसे अनगिनत उदाहरण हैं – जो कामिनी की गर्म गलबाँही को झटक कर प्रेम मार्ग से विरक्त होकर, श्रेयमार्गी हो गये। हाड़–मांस, मल–मूत्र, स्वेद– रक्त से बने इस शारीरिक सौन्दर्य में रखा ही क्या है जो उसकी आसक्ति और उपासना में पुरूष अपना सर्वस्व लुटा देता है, अपने जीवन के लक्ष्यों से भटक जाता है। उसके रूप लावण्य की गर्मी से युगों से पुरूष झुलसता आया है कितने लूट गये, टूट गये, हत्या की, आत्महत्या की। कितने शर्मनाक कर्म किए, कितने अपने जीवन को उसके पीछे खो दिया, मगर बदले में उसे क्या मिला दर्द, पीड़ा, घुटन, कुण्ठा, त्रास, बेवफाई, धोखा, जख्म, दाग, न जाने क्या–क्या न मिला।

रससिद्ध सौन्दर्य गायक, रूप के श्रेष्ठतम चितेरे मैथिल कोकिल विद्यापति को भी अन्त में यही अनुभूत सत्य कहना पड़ा

''जनम अवधि हम रूप निहारल नयन नहि तिरपित भेल।
निधुवन रमणि रस रंग मातल, तओ नहि बूझल कैसन केलि।
लाख–लाख युग हिय–हिय राखल, तओ हिय जुड़ल नहि गेल
सेहो मछवोल श्रवणहि पथ सुनल, श्रुति पथ परसि न गेल।''

यानी– कामिनी के साथ कोई कितना ही भोग–विलास करे मगर उससे तृप्ति नहीं मिलती, शांति–सौरभ नहीं मिलता। हम जितना ही विलास सुख वटोरते हैं, उतनी ही हमारी प्यास बढ़ती जाती है, अतृप्ति का असंतोश बढ़ता जाता है। चाहे कोई अपने आप को क्यों न मिटा दे लेकिन कामिनी को न तो तृप्त कर सकता है और न कामिनी से स्वयं तृप्त हो सकता है।

इसलिए संत कबीर ने खुलकर नारी के कामिनी रूप का तिरस्कार किया। नारी के बहुत से रूप है– माँ, बहन, पुत्री, गृहणी, जाया, दारा, प्राणप्रिया, भार्या, बधूँ, वामा, सहधर्मिणी, अर्द्धागिनी, प्रिया, मुग्धा, कामिनी, माननी आदि। संत कबीर को कामिनी ओर माननी रूप को छोड़कर उन्हें अन्य सभी रूप स्वीकार्य है, उनकी दृष्टि में वे स्तुत्य है और प्रशंसनीय है, मगर नारी के कामिनी और माननी रूप से उन्हें बहुत घृणा थी – उस रूप को दुनिया के आनी और विलासी लोगों ने चन्द्रमुखी समझा और अनुभवी ज्ञानी और विवेकी लोग कबीर के साथ–साथ ज्वालामुखी समझा, आग की भभकती ज्वाला समझा। दुनिया नारी के इसी दो रूप के चलते बदरंग हुई, इतिहास धर्म कलंकित हुआ, वैराग्य–विध्वंस और घुटन–टूटन की कहानी बनी। आज भी दुनिया दो रूपों में सिमटकर अपने को विलीन करती जा रही है, फलतः हिंसा, हत्या, अपहरण, बालात्कार आदि दुखद घटनाएँ बढ़ रही है।

नारी के इसी कामिनी और माननी रूप में कैकेयी द्वारा राम–सीता वनवासित हुआ, तिष्यरक्षिता ने कुणाल की सुन्दर आँखें निकाल ली, ऐसे घृणित, कुत्सित और स्वार्थपूर्ण सैकड़ो नहीं, लाखों उदाहरण है।

वैसे यह मनोवैज्ञानिक सत्य है कि सौन्दर्य लावण्य के प्रति कोई भी व्यक्ति स्वभावतः आकर्षित होता है, उसमें भी नारी का सौन्दर्य इतना उत्तेजक, मादक, आकर्षक, सम्मोहक होता है, कि जिसकी रूप राशि के आगे दुनिया की कोई भी सुन्दर वस्तु या दृश्य प्रतिस्पर्द्धा नहीं कर सकता। क्योंकि नारी सौन्दर्य की मादकता प्रकृति की अन्यूनतम अभिव्यक्ति है – जिसके साहचर्य में किसी का बँध जाना स्वाभाविक हैं। उसके सौन्दर्य लावण्य साधारण मनुष्यों को क्या, बड़े–बड़े ऋषि, मुनि, योगी, तपस्वी देवदानव सबको ऐसे खींचकर नष्ट–भ्रष्ट कर दिया जैसे चुम्बक अपनी ओर चुम्बकीय पदार्थ को खींच कर अपने सीने में चिपका लेता है। तभी तो दिनकर जी को कहना पड़ा।

''इन्द्र का आयुध जो झेल सकता है,
सिंह से बाहें मिलाकर खेल सकता है,
वही लाचार हो जाता है एक रूपसी के आगे,
जैसे मत्त गयन्द बन्ध जाता है, कोमल मृगाल की डोर से।''

ऐसा आनन्द आकर्शण है नारी के यौवन सौन्दर्य लावण्य का कि बड़े–बड़े वीर पुरूष भी उसके एक मादक दृष्टि–निक्षेप पर उसके समक्ष नतग्रीव हो जाते हैं, उसके कदमों में अपना सिर झुका देते है, राजे–महराजे अपना मुकुट उतार कर रख देते हैं – ज्ञानी–पंडित और योगी व्रती सभी अपनी दीक्षा, शिक्षा संयम, नियम और संचित तेज को क्षण मात्र में खो देते हैं और नारी पुरूष को इस कामुकतामयी कमजोरी और मूर्खता अज्ञानता पर ठठाकर हँस पड़ती है – कितना कमजोर पुरूष है मेरे नारी रूपयौवन सौन्दर्य लावण्य के आगे। वह सदा मेरे द्वार का भिखारी रहा है और शायद रहेगा। आईये, हम विवेक दृष्टि और संयम के पथ पर चलकर संत कबीर की तरह नारी के सृजनात्मक सहयोग से जीवन और जगत को सुखी बनवायें।

नारी, हमारे जीवन और सृश्टि की धूरी ही नहीं, वरन मानवीय सभ्यता और समाज की प्राणवायु है। उसके सहयोग, स्नेह, सेवा, प्रेम, ममता, त्याग और मुस्कान के बिना जीवन और जगत् एक कदम भी आगे नहीं बढ़ सकता। मगर हमें सदा यह स्मरण रखना चाहिए कि नारी सुख–विलास की कठपुतली नहीं, भोग की अराधना नहीं, वरन् वह सेवा, शक्ति, स्नेह–सहयोग और श्रद्धा की देवी है। जिसकी उपासना भोगवादी वासना से उपर उठकर ही की जा सकती है। वह हमारे जीवन को सुखमय और समृद्ध बनाने की सहयोगी एवं सहभागी है। शक्ति साधन है, न कि सुख–भोग और जीवन के साध्य। अगर हम नारी की कामिनी और माननी रूप से दृढ़ता पूर्वक यथासंभव बचकर रहें तो नारी और पुरूष दोनों का कल्याण हो जायेगा, दोनों के जीवन मे सत्यं, शिवं और सुन्दरम् का पावन संगम हो जायेगा इसी में दोनों के अस्तित्व शक्ति, गरिमा, जीवन मूल्य और मानवीयता की सुरक्षा ही होगी वरन् सौ हाथों नव श्रृंगार होगा। आइये, मिलजुलकर हम नर नारी अपने जीवन में उदात्त आदर्शो, शुभ उद्देश्यों और सद्चरित्रों को अपनाकर जीवन और जगत् को सुन्दर और सुखी बनायें। यह हमारा परम नैतिक दायित्व होता है। हे नर। वासना भोग का गरल पान मत करो, वरन् नारी से शक्ति संजीवनी का वरदान लो उसके पास शक्ति और आनन्द का खजाना है।

कवि रसलीन के शब्दों में –

अमिय हलाहल मदभरे, स्वेत, स्याम, रतनार।
जियत मरत झुकि झुकि परत जेहि चितवन एकबार।।

अर्थात् – नारी की आँखों में तीनों रंग हैं – भवेत अमृत रूप श्याम विष रूप और गुलाबी मदिरा रूप है। इस संसार में कोई नारी से अमृत प्राप्त कर जीवन धन्य करता है, तो कोई काम वासन कर्कषा स्त्री से विष ग्रहण कर मर–मिट जाता है, तो कोई स्त्री की, मदभरी गुलाबी आँखों से पीकर मदमाता हो मचलता–तड़पता है। स्त्री के गुण–दोष का ग्रहण करना पुरूष के भाग्य और इच्छा के अनुरूप फलदायी है। तुलसीदास कहते हैं –

''जड़ चेतन गुण दोषमय विस्व किन्ह करतार।'

संत हंस गुन गहहिं पय, परिहरि वारि विकार।।''

कबीर भी कहते हैं – ''मन सागर मनसां लहरि बूड़े बहुत अचेत।
कहहिं कबीर ते बाचिहैं जाके हृदय विवेक।।''

संदर्भ सूची

1. कादम्बनी पत्रिका
2. वेद
3. पुराण
4. रामचरित मानस
5. श्रृंगार शतक
6. वैराग्यशतक
7. बीजक
8. कबीर वचनावली
9. विद्यापति पदावाली
10. रीतिकालीन काव्य
11. बिहारी सतसई